[illegible]

[illegible]

- द्वितीय अध्याय -

"हास्य - व्यंग्य की परिभाषा और स्वरूप"

१. हास्य :

हास्य मनुष्य की एक सर्वसामान्य प्रवृत्ति है। मनुष्य के मनोरंजन की परिणति हास्य में होती है। जीवन में आये परम आनंद के क्षणों में मनुष्य अपनी खुशी हँसी के जरिए ही तो प्रकट करता है। इस बात का पता लगाना असंभव है कि, आदिमानव पहली बार कब, क्यों और कैसे हँसा था ? लेकिन हँसी की प्रवृत्ति का उदय भाषा के उदय से पहले हो गया, यह निश्चित है। इसलिए हँसी की यह प्रवृत्ति आज भी मनुष्य के साथ जुड़ी हुई है। हास्य की महत्ता बताते हुए डा॰ बरसानेलाल चतुर्वेदी जी कहते हैं -

"हँसी जीवन का विटामिन है। इसके बिना जीवन-रस की परिपुष्टि नहीं। यदि मनुष्य और कुछ न सीखकर केवल हँसना सीख ले - दूसरों को देखकर हँसना नहीं, अपने आप पर हँसना - तो वह सहज ही संसार और घर-गृहस्थी के भार तथा दु:ख कष्टों को झेल सकता है।"[१] जीवन के संपूर्ण आस्वाद के लिए हास्य का होना अत्यंत आवश्यक है। मनुष्य का जीवन संघर्षों में उलझा होता है। इन सभी दु:खों का सामना मनुष्य करता है तब कहीं उसे सफलता हासिल होती है और उस समय उसके मुखपर हँसी उभरती है। ये खुशी के चन्द पल मनुष्य हँसकर ही गुजार देता है।

---

१. डा॰ बरसानेलाल चतुर्वेदी - "हिन्दी साहित्य में हास्य-रस" (पृष्ठ १३)।

'हास्य' का अर्थ -

यदि हम किसी हँसनेवाले व्यक्ति से यह सवाल करें कि, हास्य का अर्थ क्या है ? तो या तो वह चुप हो जाएगा या हमें पागल करार देकर चला जाएगा। लेकिन अगर हम देखें तो "हास्य" शब्द के कई अर्थ हो सकते हैं। जैसे -

"नालन्दा विशाल शब्दसागर" के अनुसार हास्य के निम्नलिखित अर्थ होते हैं - " १. हँसने के योग्य। जिसपर लोग हँसे। २. उपहास के योग्य। (संज्ञा पु.)। १. हँसने की क्रिया या भाव। हँसी। २. नौ स्थायी भावों या रसों में से एक, जिसमें हँसी की बाते होती है। ३. दिल्लगी। ठठ्ठा। मजाक।"[१] इस प्रकार "हास्य" शब्द के कई अर्थ होते हैं। अगर हमें हास्य के कारण का पता चलें तो ही हम हास्य के योग्य अर्थ को उसके साथ जोड सकते हैं।

'हास्य' की परिभाषा -

हास्य को परिभाषा में बध्द करना बहुत ही कठिन काम है क्योंकि, हँसते तो हम सभी है परंतु उसकी परिभाषा क्या है यह तो कोई भी नहीं बता सकता। अगर कोई इस तरह प्रयास करें भी, तो उसके द्वारा दी गई परिभाषा में अतिव्याप्ति अथवा अव्याप्ति का दोष रह सकता है। फिर भी संस्कृत साहित्य से लेकर आज तक हास्य की कई परिभाषाएँ दी गयी है।

संस्कृत के आचार्य भरतमुनि ने अपने "नाट्यशास्त्रम्" ग्रंथ में हास्य को परिभाषा में बध्द करने का प्रथम प्रयास किया है। उनके अनुसार -

---

१. संपादक श्री नवल - "नालन्दा विशाल शब्द सागर" (पृष्ठ १४४१)।

"विपरीतालंकारैः विकृताचाराभिधान वेषैश्च।
विकृतैरर्थविशेषैर्हसतीति रसः स्मृतो हास्यः ।।"

इसका मतलब है कि, हास्य का उद्रेक विकृत आकार, विकृत वेश, विकृत आचरण, विकृत अभिधान, विकृत वाणी, विकृत अलंकारादि द्वारा होता है।

इसी परिभाषा को आधार बनाकर आ॰ धनंजय और आ॰मम्मट ने इसकी परिभाषा दी है। हिन्दी के रीतिकालीन कवियों की प्रवृत्ति भी हास्य को विकृति के साथ जोड़ने की ही रही। इसी वजह से भारतीय साहित्य में आदर्श हास्यरसात्मक रचनाओं का अभाव रहा। परंतु जैसे ही भारतीय साहित्यपर पाश्चात्य प्रभाव पड़ने लगा, हास्य की परिभाषा, स्वरूप एवं महत्वपर चिन्तन की नई दिशा खुलने लगी। अनेक भारतीय आचार्यों ने भी हास्य की परिभाषा प्रस्तुत करने का प्रयास किया।

आधुनिक काल में आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने हास्य को परिभाषाबध्द करने का प्रयास किया है - "हास्य यों तो केवल मन का एक वेगमात्र है, पर भावों में जिस हास को स्थान दिया गया है, वह ऐसा है जिसके आश्रयगत होने पर श्रोता या दर्शक को भी रसरूप में हास की अनुभूति होती है। वह आलम्बन प्रधान होता है। यों ही प्रसन्नता के कारण (जैसे शत्रु के विरुध्द अपनी सफलता) जो हँसी आती है, वह भाव की कोटि में नहीं, वह मन की उमंग या शरीर का व्यापार मात्र है। उसके प्रदर्शन से श्रोता या दर्शक के हृदय में हास की अनुभूति नहीं हो सकती।" १

आ॰शुक्ल के साथ-साथ डा॰ एस॰पी॰ खत्री, डा॰ बरसानेलाल चतुर्वेदी, डा॰ सावित्री सिनहा, डा॰ धर्मस्वरूप गुप्त, डा॰ वी॰के॰ कृष्णामेनन डा॰ गुलाबराय आदि ने भी "हास्य" की परिभाषा देने का प्रयास किया है परंतु उन सभी ने हास्य के केवल एक-एक पहलू को हमारे सामने रखा है।

१॰ आ॰रामचंद्र शुक्ल - "रसमीमांसा", (पृष्ठ१५७)।

जैसे डा॰ एस॰पी॰ खत्री ने हास्य की आत्मा मात्र की चर्चा की है और बताया है कि इसका सम्बन्ध मानवी विचारधाराओं से है। वह हास्य की परिपूर्ण परिभाषा नहीं हो सकती। डा॰ बरसानेलाल चतुर्वेदी जी ने "हिन्दी साहित्य में हास्य रस" ग्रंथ की रचना तो की है लेकिन हास्य की पूर्ण परिभाषा नहीं दी है। डा॰ सावित्री सिनहा, डा॰ धर्मस्वरूप गुप्त और डा॰ गुलाबराय ने हास्य को विकृतियों का वाहक माना है।

डा॰ बालेन्दुशेखर तिवारी मानते हैं - "हास्य रस का स्थायी भाव हास है जिसका आगम विकृत वेशभूषा अथवा वाणीविकार के कारण उत्पन्न आनंद से होता है। हास्य एक चित्तवृत्ति अथवा मनोदशा है। आचार्यों ने कौतुहल अथवा मनोरंजन उत्पन्न करनेवाले विकृत वचन, वेश एवं चेष्टा के श्रवण या दर्शन से व्युत्पन्न विनोदपूर्ण मनोविकार के रूप में हास को परिभाषित किया है।" [१]

प्राचीन भारतीय आचार्यों ने हास्य की चर्चा नाटक के संदर्भ में की थी। आ॰ भरत से लेकर सभी ने इसे परिभाषित करने का प्रयास किया। उसी प्रकार पाश्चात्य विचारकों ने भी "हास्य" का संबंध "कामदी" के साथ ही जोडा और उसी के माध्यम से "हास्य" को परिभाषित करने का प्रयास किया था।

अरस्तू ने लिखा है - कामदी को देखकर हमारी आत्मा कष्ट और आनन्द की मिश्रित अनुभूति प्राप्त करती है। अरस्तू के इन्हीं विचारों का अनुमोदन प्लेटो और सिसरो ने भी किया है।

आधुनिक काल में टॉमस हॉब्स ने इन्हीं विचारों को अपने शब्दों में प्रकट किया है - हास्य आपने गौरव की अनुभूति से उद्भूत प्रसन्नता का प्रकाशन है।

एक अन्य विद्वान मेरेडिथ ने माना है कि, सहानुभूतिजन्य परिहास ही हास्य है। वालतेयर ने लिखा है - हास्य सर्वदा ऐसी आनन्दवृत्ति से उद्भूत होता है जो आनन्द की संतुष्टितक ही खण्डित नहीं हो सकती।

---

१. डा॰बालेन्दुशेखर तिवारी - "व्यंग्यालोचन" (पृष्ठ २७)।

इससे थोडा और आगे बढकर हेगेल ने स्वीकार किया है कि, (हास्य) कामदी के साथ अविनाशी सम्बन्ध रखनेवाली ऐसी आनन्द वृत्ति और आत्मविश्वास है, जो अपने अंतर्विरोध से ऊपर उठ सकने की क्षमा रखता है।

इस प्रकार अनेक पाश्चात्य एवं भारतीय विद्वानों ने हास्य को परिभाषित करने का प्रयास किया है। लेकिन प्रत्येक परिभाषा अधूरी लगती है। डा॰ बालेन्दु शेखर तिवारी ने इसे परिभाषित करने का प्रयास इस प्रकार किया है - "हास्य विनोदिनी मन की अभिव्यक्त मुद्रा है जिसमें सुखप्रद कोमल भाव अन्तर्निहित रहते हैं जिनके माध्यम से चित्र की संचित गंभीरता में आकस्मिक विस्फोट-सा उठकर चित्र को कुछ क्षणों के लिए सात्विक आनंद से भर देता है।" [१]

हास्य के लक्षण -

हँसते वक्त मनुष्य के द्वारा जो क्रियाएँ होती हैं, जो शरीर विक्षेप होते हैं, उन सभी को हास्य के लक्षणों के अंतर्गत रखा जा सकता है। जैसे हँसते वक्त दंतपंक्ति दिखाई देना, नाक फूल जाना कंधे-सिर का संकुचित होना, कंधे-सिर का हिलना आदि। इन लक्षणों के आधारपर ही हास्य के कई भेद-प्रभेद किये गये हैं।

हास्य के प्रकार -

हास्य का विभाजन करने का प्रथम प्रयास आ॰भरतमुनि ने किया था, उन्होंने हास्य को "आश्रय के आधारपर" दो भागों में विभाजित किया था।

१. डा॰बालेन्दु शेखर तिवारी - "हिन्दी का स्वातंत्र्योत्तर हास्य और व्यंग्य" (पृष्ठ २५)।

आत्मस्थ -

कोई व्यक्ति जब अपने-आप पर हँसता है तो उसे आत्मस्थ हास्य कहा जाता है।

परस्थ -

कोई व्यक्ति जब दूसरे पर हँसे अथवा दूसरे को हँसा लेता है, तब उसे परस्थ हास्य कहा जाता है।

"साहित्यदर्पणकार" ने हास्य के "शारीरिक क्रियाओं के आधारपर" छः भेद किये हैं -

स्मित -

इसमें नेत्र विकसित हो जाते है। कपोलों के निचले भागपर हल्की हँसी की छाया दिखाई देती है। कपोलों पर तनिक सिकुड़न पड़ती है।

हसित -

इसमें कपोलों पर हास्य प्रकट रहता है, कुछ-कुछ दाँत भी दिखाई देते है और मुख और नेत्र अधिक प्रफुल्लित हो जाते है।

विहसित -

इसमें हँसते समय आँखे और कपोल संकुचित हो जाते है और हँसने की धीमी ध्वनि निकलती है।

उपहसित -

इसमें नाक फूल जाती है, सिर और कन्धे सिकुड़ जाते है और दृष्टि में कुछ वक्रता आ जाती है।

अपहसित -

इसमें असमय हँसी फूटती है, कंधे-सिर आदि हिलते हैं और हँसते-हँसते आँखों में आँसू आ जाते हैं।

अतिहसित -

इसमें नेत्रों से तीव्रता से आँसू आते हैं, मनुष्य हँसते-हँसते पेट पकडता है, उध्दृत चिल्लाहट के समान स्वर निकलता है।

इनमें से स्मित और हसित श्रेष्ठ लोगों के योग्य, विहसित और उपहसित मध्यम श्रेणी के और अपहसित तथा अतिहसित को अधम कोटि का माना गया है।

हास्य का अन्य भी कई प्रकारों से विभाजन किया गया है। जैसे -

स्वभाव की दृष्टि से - १. कोमल हास्य।
२. उदासीन हास्य।
३. कठोर हास्य।
४. निर्मम हास्य।

हँसने-हँसानेवाले पात्रों की दृष्टि से - १. ज्ञात हास्य।
२. अज्ञात हास्य।

डा. रामकुमार वर्मा ने हास्य को भावविकारों की दृष्टि से विभाजीत किया है -

(क) सहज विकार - १. विनोद (wit)।
२. अट्टहास (Laughter)।

(ख) दृष्टि विकार - ३. अतिरंजना (Caricature)।
४. विद्रूप (Contrast)।

(ग) भाव विकार - ५. परिहास (Parody)।
६. उपहास (Comic)।

(घ) ध्वनि विकार - ७. व्याजोक्ति (Sarcasm)।
८. व्यंग्योक्ति (Tendency wit)।

(ङ) बुध्दि विकार - ९. व्यंग्य (Satire)।
१०. विकृति (Irony)।

पाश्चात्य विद्वानों ने हास्य के पाँच प्रभेदों को स्वीकार किया हैं - १. स्मित हास्य (Humour), २. वाक्छल (wit), ३. व्यंग्य (Satire), ४. वक्रोक्ति (Irony), ५. प्रहसन (Farce)।

स्मित हास्य (Humour) -

स्मित एक अत्यंत सूक्ष्म मानसिक वृत्ति है। उसकी कोई निश्चित परिभाषा नहीं है। यह हास्य निष्प्रयोजन, संवेदनशील और करुणासिक्त होता है। हिन्दी में ऐसे हास्य की कमी रही है।

वाक्छल (wit) -

वचनों की विदग्धता के कारण जो उक्ति चमत्कार होता है उसे " wit " कहते हैं। एडीसन ने "विट" की व्याख्या करते हुए लिखा है - "पदार्थों के जिस सम्बन्ध में पाठकों या श्रोताओं में प्रसन्नता या आश्चर्य या चमत्कृति उत्पन्न हो और उसमें भी विशेषतः चमत्कृति जान पड़े उसे कहते है। इसमें हास्यकारक विषय का वर्णन उपमा, विरोध दर्शन आदि का इस्तमाल कर किया जाता है॥

व्यंग्य (Satire) -

"सटायर" का आरंभ दृश्य काव्य से हुआ। रोमन विद्वान मानते हैं कि, उन्हीं से यूनानीयों ने इसे प्राप्त किया जब कि, यूनानी मानते है कि, रोमन्स ने उनसे यह पाया है। यह सोद्देश्य होता है। कई विद्वानों ने इसे परिभाषित करने का प्रयास किया है। "आलम्बन के प्रति उपेक्षा या भर्त्सना की भावना लेकर बढ़नेवाला हास्य, व्यंग्य कहलाता है।" [१]

वक्रोक्ति (Irony) -

वक्रोक्ति का अर्थ है - टेढ़ा कथन। डा॰नगेंद्र ने इसे Irony का पर्यायवाची शब्द माना है। इसकी भी कई परिभाषाएँ दी गयी है।

पाश्चात्य विद्वान मेरीडिथ ने वक्रोक्ति की जो परिभाषा दी है, उसका आशय यह है - "यदि आप हास्यास्पद पर सीधा व्यंग्य-बाण न छोड़े, परन् उसे ऐसा उमेठ दे एवं किलकारी निकलवा दें, प्यार के आवरण में उसे डंक मारे जिससे वह अंतर्द्वंद्व में पड़ जाय कि, वास्तव में किसी ने उसपर प्रहार किया है अथवा नहीं तब आप वक्रोक्ति का उपयोग कर रहे है।"[२] इसका उदाहरण देते हुए चतुर्वेदी जी ने लिखा है - "भारतीय उदाहरणों में मधुमक्खी इसका जीवित प्रतीक है। यद्यपि नाम मधुमक्खी है किन्तु इसका दंश कितना तीखा होता है। "विमाता" शब्द में माता तो लगा हुआ है किन्तु उसमें द्वेष की व्याधि भीतर छिपी हुई है।" [३]

प्रहसन (Farce) -

प्रहसन अंग्रेजी के Comedy के निकट प्रतीत होता है। इसलिए इसे Comedy का पर्यायवाची शब्द माना गया है। हम इसे हास्य और

१. डा॰बरसानेलाल चतुर्वेदी - "हिन्दी साहित्य में हास्य-रस", (पृष्ठ ४६)।
२. - वही - (पृष्ठ४८)।
३. - वही - (पृष्ठ ४८)।

व्यंग्य के विचार से लिखा गया नाटक कह सकते है। मैरीडिथ ने इसकी आत्मा भाव को माना है। हिन्दी साहित्य में इसका आरंभ भारतेन्दु काल से हो गया।

इस प्रकार पाश्चात्य विद्वानों ने किये हुए पाँच भेदों का विश्लेषण हम कर सकते हैं।

इस प्रकार हास्य के पूरे विश्लेषण के बाद हम इस नतीजे पर पहुँचते है कि, कितने ही लोगों ने हास्य को परिभाषीत करने का प्रयास किया हो, उसे सही अर्थों में कोई भी परिभाषीत न कर सका। हास्य के अलग अलग दृष्टि में प्रकार जरूर किये गये हैं लेकिन उसको कोई भी एक विद्वान प्रकारों में विभाजित न कर सका। अर्थात हर एक ने जो प्रकार बनाये उसमें कहीं-न-कहीं कोई कमी तो जरूर रह गयी है।

२. <u>व्यंग्य</u> :

"व्यंग्य यानी क्या ?" यह बताते हुए गोपालप्रसाद व्यास कहते है - "व्यंग्य वह सामाजिक और साहित्यिक सिध्दि है जो हरेक को प्राप्त नहीं होती। इसे अभ्यास से भी प्राप्त नहीं किया जा सकता।" [१]
Satire के पर्यायवाची शब्द के रूप में हिन्दी साहित्य में "व्यंग्य" शब्द का प्रयोग होता आया है। लेकिन "सटायर" के लिए "व्यंग्य" के साथ-साथ उपहास, विकृति जैसे कई शब्द प्रचलित है। भारतीय साहित्यशास्त्रीयों ने हास्य रस के वस्तु-पक्ष याने विषयपक्ष पर अधिक ध्यान दिया। हास्य के व्यंजना पक्ष पर जोर देनेवाले पाश्चात्य साहित्यिक उसके पाँच भेद मानते है जिसमें से एक व्यंग्य या सटायर है।

भारतीय आचार्यों ने शब्द की तीन शक्तियाँ मानी हैं - अभिधा, लक्षणा और व्यंजना। इन तीनों में से "व्यंजना" शब्दशक्ति व्यंग्य

---

१. सम्पादक विश्वनाथ सचदेव "धर्मयुग" (पाक्षिक १६ से ३१ मार्च, १९९५) (पृष्ठ ३०)।

के अधिक समीप है। फिर भी संस्कृत में "व्यंग्य" शब्द "व्यंजना" शक्ति द्वारा प्राप्त साधारण से भिन्न अर्थ में प्रयुक्त हो रहा था इसलिए "व्यंग्य" को "सटायर" के पर्याय के रूप में प्रयुक्त करना ही समीचीन होगा।

रोम में ६५ ई॰पू॰ में Saturge शब्द का प्रयोग अमर्याद नाटकों के लिए किया जाता था। यही शब्द लैटिन में Satura बना और अंग्रेजी में इसका रूप Satire बना।

"व्यंग्य" शब्द की व्युत्पत्ति "वि" उपसर्ग पूर्वक "अज्ज" धातु में "ण्यन" प्रत्यय लगाकर हो गई है। "हिन्दी साहित्य कोश" में इसकी व्युत्पत्ति – वि + अंग = व्यंग्य इस प्रकार की गयी है।

व्यंग्य का अर्थ –

व्यंग्य के कई अर्थ हो सकते हैं। "हिन्दी शब्द सागर" में व्यंग्य के अर्थ दो दिये गये है – १॰ शब्द का वह गूढ़ अर्थ जो उसकी व्यंजना वृत्ति द्वारा प्रकट हो, २॰ ताना, बोली, चुटकी। "व्यंग्य" शब्द का यही अर्थ नालन्दा विशाल शब्द सागर, हिन्दी विश्वकोश, संक्षिप्त हिन्दी शब्द सागर, मानक हिन्दी कोश आदि में भी व्यंग्य का यही अर्थ दिया गया है।

प्राचीन भारतीय वाङ्मय में व्यंग्य संज्ञा का अस्तित्व परिहास, चुहुल, खिल्ली उड़ाना, भड़ौवे, स्यापा आदि कई अर्थों में था।

व्यंग्य की परिभाषा –

आज तक व्यंग्य की कोई निश्चित परिभाषा सामने नहीं आ पायी है क्योंकि उसके बारे में विद्वानों में मतैक्य नहीं है। व्यंग्य के स्वरूप, उसके महत्व आदि को मद्दे नजर रखते हुए विविध विचारकों ने अलग-अलग परिभाषाओं को प्रस्तुत किया है।

"एनसाइक्लोपीडिया आफ ब्रिटानिका" में व्यंग्य की परिभाषा इस प्रकार दी है - "व्यंग्य अपनी साहित्यिक विधा के रूप में परिहासात्मक अथवा विशेष व्यक्ति के प्रति खिल्ली उड़ाने अथवा चोट पहुँचाने की प्रहारात्मक अभिव्यक्ति है। साहित्यिकता एवं हास्य उसके आवश्यक अवयव है। हास्यहीन व्यंग्य गाली-गलौज और बिना साहित्यिक विधा के व्यंग्य विदूषक की उक्ति बन जाता है।" [१]

कई विदेशी साहित्यकार जैसे जार्ज मेरेडिथ, म्येथ्यू हागर्थ आदि ने भी व्यंग्य को परिभाषीत करने का प्रयास किया है। फिर भी उनमें कोई न कोई कमी तो जरूर रही है।

हिन्दी में भी कई आलोचकों ने व्यंग्य को परिभाषा में बध्द करने का प्रयास किया है।

डा॰ शेरजंग गर्ग लिखते है - "व्यंग्य एक ऐसी साहित्यिक अभिव्यक्ति या रचना है, जिसमें व्यक्ति तथा समाज की कमजोरियों, दुर्बलताओं करनी एवं कथनी के अंतरों की समीक्षा अथवा निन्दा भाषा को टेढ़ी भंगिमा देकर अथवा कभी-कभी पूर्णतः सपाट शब्दों में प्रहार करते हुए की जाती है। वह पूर्णतः अगम्भीर होते हुए भी गंभीर हो सकती है, निर्दय लगते हुए दयालु हो सकती है, प्रहारात्मक होते हुए तटस्थ हो सकती है। मखौल लगती हुई बौध्दिक हो सकती है। अतिशयोक्ति एवं अरंजना का आभास देने के बावजूद पूर्णतः सत्य हो सकती है। व्यंग्य में आक्रमण की उपस्थिति अनिवार्य है।" [२]

व्यंग्य की परिभाषा देते हुए डा॰बालेन्दु शेखर तिवारी ने कहा है - "व्यंग्य एक विशिष्ट समाजधर्मी प्रेक्षणविधि अथवा एक विशिष्ट मानसिक भंगिमा है जिसका उद्भव अंतर्विरोधों के कारण होता है और जिसमें व्यक्ति अथवा व्यवस्था विशेष के दौर्बल्य की आक्षेपात्मक अभिव्यक्ति द्वारा परिवर्तन का अभीष्ट पूर्ण होता है।" [३]

१॰ एनसाईक्लोपीडिया ब्रिटानिका (खण्ड २०), (पृष्ठ ५)।
२॰ डा॰शेरजंग गर्ग - "व्यंग्य के मूलभूत प्रश्न" (पृष्ठ २९-३०)।
३॰ डा॰बालेन्दु शेखर तिवारी - "हिन्दी का स्वातंत्र्योत्तर हास्य और व्यंग्य" (पृष्ठ ३६)।

डा॰ ए॰एन॰ चंद्रशेखर रेड्डी व्यंग्य की परिभाषा इस प्रकार देते है - "जिस साहित्यिक रचना में व्यक्ति या समाज की कमजोरियों, विकृतियों पर टेढ़ी भंगिमा में दयाशून्य, सहानुभूतिहीन प्रहार किया जाता है उसे व्यंग्य कह सकते हैं। वह पूर्णत: प्रहारात्मक होते हुए जीवन से साक्षात्कार कराता है। वह प्रहारात्मक होते हुए नैतिक बोध कराता है।"[1]

डा॰ बापूराव देसाई कहते हैं - "व्यंग्य समाज की तत्कालीन विसंगतिपूर्ण परिवेश की वह तलख अभिव्यक्ति है, जो प्रहार कर व्यक्ति, वस्तु तथा समाज की पोल खोलने का एक अस्त्र है।"[2]

डा॰ बरसानेलाल चतुर्वेदी जी ने सभी परिभाषाओं के विश्लेषण के बाद व्यंग्य के तीन मूल तत्व सामने रखे हैं। वे हैं -

"१॰ साहित्यिकता एवं साहित्यिक विधा इसके अनिवार्य अवयव हैं।
२॰ दूसरों की मूर्खताओं की हँसी उड़ाना इसका ध्येय है।
३॰ व्यंग्य की सृष्टि के लिए हास्य, वक्र-उक्ति, वचन-विदग्धता आदि आवश्यक उपकरण है।"[3]

इस प्रकार व्यंग्य को परिभाषाबद्ध करने का प्रयास कई विद्वानों ने किया है। लेकिन कहीं-न-कहीं, कोई तो कमी उन परिभाषाओं में रही है और वे परिभाषाएँ अपूर्ण बन गयी है। आज तक "व्यंग्य" की परिपूर्ण परिभाषा देने में कोई भी आलोचक सफल नहीं हो पाया है।

व्यंग्य के प्रकार -

आधुनिक काल के समीक्षक व्यंग्य को हास्य का एक भेद मानकर उसका वर्गीकरण करने से कतराते हैं। प्राचीन काल में व्यंग्य को अलग सत्ता

१॰ डा॰ए॰एन॰चंद्रशेखर रेड्डी - "हिन्दी व्यंग्य साहित्य" (पृष्ठ ४१)।
२॰ डा॰बापूराव देसाई -"हिन्दी व्यंग्य विधा : शास्त्र और इतिहास", (पृष्ठ २०)।
३॰ डा॰बरसानेलाल चतुर्वेदी - "आधुनिक हिन्दी काव्य में व्यंग्य", (पृष्ठ १२)।

12924
A

के रूप में स्वीकार नहीं किया गया था। परंतु आधुनिक काल में व्यंग्य का अलग वर्गीकरण किया जाता है।

डा॰ बालेन्दु शेखर तिवारी ने लिखा है - "हास्य के भेद के रूप में जिन तत्वों की चर्चा होती रही है, उन सबका सीधा सम्बन्ध व्यंग्य के साथ है। हास्य का एकमात्र स्वरूप विनोद है, शेष सारे व्याजोक्ति, ताना, चामत्कारिक विनोद वचन जैसे उपभेद व्यंग्य के साथ सम्बन्ध है।" १

आचार्य भरतमुनि ने जिस प्रकार हास्य के दो भेद - आत्मस्थ और परस्थ हास्य माने थे, उसी के आधारपर डा॰ शेरजंग गर्ग ने व्यंग्य को आत्मव्यंग्य और परस्था व्यंग्य जैसे स्थूल भेदों में वर्गीकृत किया है। इसी को आधार बनाकर डा॰ बरसानेलाल चतुर्वेदी जी ने लिखा है -

"वास्तव में व्यंग्य दो प्रप्रकार का होता है - १॰ व्यक्तिगत व्यंग्य, २॰ समष्टिगत व्यंग्य। समष्टिगत व्यंग्य का वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है - १॰ धर्म - सम्बन्धित, २॰ समाज - सम्बन्धित, ३॰ साहित्य - सम्बन्धित, ४॰ राजनीति - सम्बन्धित, ५॰ मानवीय दुर्बलताओं से सम्बन्धित।" २

ये वर्गीकरण या तो "आश्रय" को दृष्टि में रखकर किया गया है, या "आलम्बन" को दृष्टि में रखकर किया गया है। परंतु व्यंग्यकार की दृष्टि व्यक्ति या समाज की इकाई पर न होकर उसकी विकृति पर होती है इसलिये यह वर्गीकरण प्रामाणिक नहीं माना जा सकता।

बालेन्दु शेखर तिवारी जी ने व्यंग्य का विभाजन पाँच भागों में किया है। वे कहते हैं - व्यंग्य के स्वभाव से मेल खानेवाली प्रमुख अभिव्यक्ति भंगिमाएँ अधोलिखित हैं - १॰ चामत्कारिक विनोद वचन (Wit), २॰ व्याजोक्ति (Irony), ३॰ उपहास (Sarcasm), ४॰ व्याकृति (Burlesque), ५॰ आक्षेप (Campoon)।

१॰ डा॰बालेन्दु शेखर तिवारी - "हिन्दी का स्वातंत्र्योत्तर हास्य और व्यंग्य" (पृष्ठ ६९)।

२॰ डा॰बरसाने लाल चतुर्वेदी - "आधुनिक हिन्दी काव्य में व्यंग्य"(पृष्ठ २४)।

उन्होंने इन के बारे में लिखा है - "व्यंग्य के जिन पाँच भेदों की चर्चा की गई है, उनका वर्गीकरण आलम्बन के आधारपर न होकर व्यंग्य की चारित्रिक भंगिमा के आधारपर हुआ है। भर्त्सना (Invective), छिद्रान्वेषण (Cynicism), विद्रूप (contrast), जैसे कुछ अन्य भेदों की परिकल्पनाएँ भी की गयी हैं। व्यंग्य का चरित्र चामत्कारिक विनोद वचन, व्याजोक्ति, उपहास, व्याकृति और आक्षेप के अंतर्गत भली-भाँति प्रस्तुत हुआ है और व्यंग्य के यही प्रभेद समस्त व्यंग्य - विधान की मूल पीठिका भी है " [१]

परंतु अगर देखा जाय तो बालेन्दु शेखर तिवारी जी ने जो व्यंग्य का विभाजन किया है वह व्यंग्य के भेद न होकर उसके लिए प्रयुक्त साधनमात्र ही है। इसलिये इस विभाजन को व्यंग्य का सही विभाजन मानकर चलना गलत होगा।

डा॰ बरसानेलाल चतुर्वेदी जी ने व्यक्तिगत व्यंग्य के बारे में लिखा है - "किसी व्यक्ति-विशेष को लक्ष्य बनाकर जो व्यंग्य किया जाता है वह व्यक्तिगत व्यंग्य कहा जाता है। व्यक्तिगत व्यंग्य के औचित्य अथवा अनौचित्य पर विभिन्न मत हैं। व्यक्तिगत व्यंग्य लिखना साहस का कार्य है। कभी-कभी इसके परिणाम भयंकर होते हैं। यदि व्यंग्यकार अपनी व्यक्तिगत जलन के कारण किसी व्यक्ति विशेष पर व्यंग्य करता है तो वह अशिष्ट है। हाँ, यदि व्यंग्यकार व्यक्ति-विशेष को लक्ष्य बनाकर व्यंग्य करने से किसी प्रचलित बुराई के प्रति समाज की घृणा उत्पन्न करने में सफल हो जाता है, तो वह उपयोगी माना जायेगा।" [२]

समष्टिगत व्यंग्य के डा॰ बरसानेलाल चतुर्वेदी जी ने पाँच प्रकार बताये है।

१॰ डा॰बालेन्दु शेखर तिवारी - "हिन्दी का स्वातंत्र्योत्तर हास्य और व्यंग्य" (पृष्ठ ७३)।

२॰ डा॰बरसानेलाल चतुर्वेदी - "आधुनिक हिन्दी काव्य में व्यंग्य"(पृष्ठ २४)।

धर्म सम्बन्धित -

धर्म सम्बन्धी व्यंग्य करनेवाले पहले व्यंग्यकार कबीर थे। पाश्चात्य देशों में बारहवी सदी से धर्म सम्बन्धित व्यंग्य लिखा जाने लगा।

समाज सम्बन्धित -

समाज में व्याप्त कुरीतियों पर रूढ़ियों पर जो व्यंग्य लिखा जाता है, उसे समाज सम्बन्धित व्यंग्य कहा जाता है। हिन्दी साहित्य में द्विवेदी युग में इस प्रकार का व्यंग्य प्रचलित रहा।

साहित्य सम्बन्धित -

सभी भाषाओं के साहित्य में साहित्य सम्बन्धि व्यंग्य के रूप हम देख सकते हैं। साहित्यिक व्यंग्य के विषय किसी विशेष साहित्यिक प्रवृत्ति समालोचक, साहित्यिक चोरी, भाषा सम्बन्धी आग्रह आदि रहे हैं।

राजनीति सम्बन्धित -

इस प्रकार के व्यंग्य की हिन्दी साहित्य में शुरुआत भारतेन्दु काल से हुई। स्वातंत्र्य पूर्व काल में ब्रिटीश शासन के विरोध में और स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् समाज की समस्याओं के साथ नेताओं के दलबदलू व्यवहार, भ्रष्टाचार आदि पर व्यंग्य लिखना शुरू हुआ।

मानवीय दुर्बलताओं से सम्बन्धित -

मनुष्य की कई दुर्बलताएँ है। जैसे - लालच, यशलिप्सा, ढोंग, झूठी प्रतिष्ठा, दोगलापन, धोखेबाजी आदि। इन सभी पर प्राचीन काल से ही व्यंग्य लिखा जा रहा है।

डा॰ ए॰एन॰ चंद्रशेखर रेड्डी ने व्यंग्य का विभाजन व्यंग्यकारों का विभाजन कर किया है - "व्यंग्यकार दो प्रकार के हो सकते हैं - टूटने योग्य मूल्यों पर व्यंग्य करनेवाले और न टूटने योग्य मूल्यों पर व्यंग्य कसकर उसको बनाये रखनेवाले। इन दोनों प्रकार के व्यंग्यकारों की रचनाशैली जीवन दृष्टि तथा विसंगति के आधारपर व्यंग्य का विभाजन किया जा सकता है। पहले वर्ग के व्यंग्यकारों के आधारपर कुंठाजन्य या ध्वंसात्मक व्यंग्य, दूसरे वर्ग के व्यंग्यकारों के आधारपर रचनात्मक व्यंग्य का रूप देखा जा सकता है।" १

इस प्रकार हम देखते हैं कि, व्यंग्य के भेद करने का कई आलोचकों ने प्रयास किया है। लेकिन अगर हम तुलनात्मक दृष्टि से देखें तो हर एक ने उसके एक पक्ष को सामने रखकर ही उसे विभाजित करने का प्रयास किया है। इसलिए हम किसी भी विभाजन को अंतिम नहीं मान सकते।

३. हास्य और व्यंग्य में अंतर -

वैसे देखा जाय तो हास्य और व्यंग्य का सम्बन्ध चोली-दामन के समान है। इन दोनों को अलग करना बहुत कठीन है। फिर भी आधुनिक काल में व्यंग्य को एक अलग विधा के रूप में माना जाने लगा है। "आलोचना" पत्रिका में "व्यंग्य की सामाजिकता" इस लेख में श्री प्रेमशंकर जी लिखते हैं - "व्यंग्य के साथ हास्य का तो ऐसा तालमेल है कि, उन्हें अलगा पाने में कठिनाई होती है और वे लगभग एक साथ प्रयुक्त होते रहे हैं।" २

---

१. डा॰ए॰एन॰चंद्रशेखर रेड्डी - "हिन्दी व्यंग्य साहित्य" (पृष्ठ ५३-५४)।

२. संपादक नामवरसिंह - "आलोचना" (त्रैमासिक, जनवरी-मार्च,१९८९) (पृष्ठ ५१)।

"व्यंग्य विवेचन" इस पुस्तक की समीक्षा करते हुए समीक्षक श्री तेजपाल चौधरी लिखते है - "व्यंग्य को घात-प्रतिघात भी बहुत झेलने पड़े हैं। किसी ने उसे नकारात्मक लेखन कहकर चिढ़ाया है तो किसी ने उत्तेजना के क्षणों का प्रलाप। किसी ने उसे दैनिक समाचार पत्र की तरह क्षणभंगुर और अस्थायी कहकर उसकी शाश्वतता को नकारा है तो किसी ने उसे केवल हास्य का सहजीवी मान लिया है।" [१]

चाहे जितना एक मान क्यों न लिया जाय, हास्य और व्यंग्य में थोड़ा-बहुत तो अंतर है ही। इस अंतर को स्पष्ट करते हुए डा॰बरसानेलाल चतुर्वेदी जी ने लिखा है - "हास्यकार अपने आलम्बन का मजाक सहानुभूतिपूर्ण ढंग से उड़ाता है जब कि व्यंग्यकार का उद्देश्य हँसी द्वारा दंड देना होता है। हास्य का उद्देश्य विशुध्द मनोरंजन करना होता है जबकि व्यंग्य का उद्देश्य सुधार करना होता है। हास्य में भावतत्व प्रमुख होता है, व्यंग्य में बुध्दितत्व। व्यंग्यकार हर प्रकार की विकृति को गंभीरता से देखता है, निर्ममता से उसका पर्दाफाश करता है एवं समाज से अपेक्षा करता है कि, उस व्यक्ति की भर्त्सना करे जबकि हास्यकार उस विकृति का वर्णन कर संतोष कर लेता है। हास्यकार को उस असामजिक तत्व के नैतिक पक्ष से कुछ लेना-देना नहीं रहता।" [२]

हास्य-विनोद का विकास सामन्ती परिवेश में हुआ था लेकिन उस समय यह उसकी सीमा थी कि, वह थोडी देर के लिए ही हँसाता था। इस समय व्यंग्य का मुख्य आधार हास्य था। वह सिर्फ मनोरंजन का एक माध्यम था। परंतु बाद में भाषाओं के देशी स्वरूप की प्रक्रिया के विकास के साथ-साथ व्यंग्य जन-सामान्य की संवेदनाओं का प्रतिनिधित्व करने लगा। इसके विकास की प्रक्रिया के बारे में प्रेमशंकर जी ने अपने "व्यंग्य की सामाजिकता" लेख में लिखा है -

---

१॰ संपादक विद्यासागर विद्यालंकार - "प्रकर" (मासिक, जनवरी,१९९५), (पृष्ठ ८)।

२॰ डा॰बरसानेलाल चतुर्वेदी - "आधुनिक हिन्दी काव्य में व्यंग्य"(पृष्ठ १२)।

"१८ वी शताब्दी में कामेडी के माध्यम से हास्य को प्रधानता दी गई। सत्य ही यह प्रयत्न भी किया गया कि, सामाजिक परिवेश पर कुछ फब्तियां कसी जाय। ड्राईडन, स्विफ्ट, एडिसन, स्टील, पोप आदि ने अठारहवी शताब्दी में यही किया, पर बीसवीं शताब्दी में बर्नार्ड जॉर्ज शॉ जैसे लेखकों ने मध्यकाल से चले आते हुए हास्य को व्यंग्य का अनुवर्ती बनाया।" [१]

हिन्दी साहित्य में व्यंग्य के प्रजातांत्रीकरण की प्रक्रिया देवभाषा का वर्चस्व टूटने के साथ आरंभ हुई। हास्य को व्यंग्य के साथ अलग करनेवाला कारण बताते हुए प्रेमशंकर जी ने लिखा है - "कई बार हम व्यंग्यकार को एकाधिक दिशाओं में जाते हुए देखते हैं - आक्रामक मुद्रा से लेकर सहज करुणा भाव तक और यह सब केवल किसी अंतर्विरोध के कारण नहीं बल्कि एक मानवीय चिंता के अंतर्गत होता है, जिसे हम सार्थक लेखन का मूलाधार मानते है। यही वह बिन्दु है जहाँ हम एक साधारण हास्य - प्रसंग को श्रेष्ठ व्यंग्य रचना से अलगा सकते हैं।" [२]

डा॰ ए॰एन॰ चंद्रशेखर रेड्डी ने लिखा है - "यह निश्चित है कि, व्यंग्य अपनी सम्प्रेषणीयता के लिए किंवा प्रभावात्मकता के लिए हास्य पर निर्भर नहीं होता।" [३]

"हास्य और व्यंग्य कितने भिन्न कितने एक" इस लेख में डा॰तेजपाल चौधरी लिखते है - "आज हिन्दी में हास्य या तो पत्र-पत्रिकाओं तक सीमित रह गया है या मंचीय कविता तक, और वह भी उत्कृष्ठ रूप में नहीं। पत्र-पत्रिकाओं के हास्य में ताजगी का अभाव हैं तो मंचीय कविताओं में उदात्तता का। मंचीय हास्य कभी-कभी तो अत्यंत फूहड़ और अश्लील हो जाता है। किन्तु व्यंग्य ने निःसंदेह अपनी पहचान बनायी है। आज उसे एक विधा का दर्जा हासिल है। दो-तीन दशक पहले तक व्यंग्य एक शैली मात्र

१॰ संपादक नामवरसिंह - "आलोचना" (त्रैमासिक, जनवरी-मार्च,१९८९) (पृष्ठ ५७)।

२॰ - वही - (पृष्ठ ५३)।

३॰ डा॰ए॰एन॰चंद्रशेखर रेड्डी - "हिन्दी व्यंग्य साहित्य" (पृष्ठ ४५)।

था। परंतु अब यह अन्य साहित्यिक विधाओं का उपजीवी मात्र नहीं रहा। उसका साहित्य में अपना अस्तित्व है, अपना स्थान है।" [१]

इस प्रकार हम चाहे जितना साम्य हास्य और व्यंग्य में क्यों न माने आज व्यंग्य को हास्य से अलग माना जाता है। आज अलग-अलग विधा के रूप में इन दोनों का भी महत्व नकारा नहीं जा सकाता।

निष्कर्ष :

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि, मनुष्य की सर्वसामान्य प्रवृत्ति हास्य और साहित्य की हास्य से अलग हुए और विधा के रूप में पहचाने जानेवाले व्यंग्य को आज पूरी तरह से परिभाषित नहीं किया गया है और न ही उनके अर्थ, लक्षण और प्रकार आदि के बारे में कुछ अंतिम रूप से कहा जा सकता है। आज तक जो भी परिभाषाएँ, लक्षण और प्रकार दिये जा चुके हैं उनमें थोड़ा-बहुत दोष तो रह गया है। वैसे भी समय के साथ-साथ इनका स्वरूप, परिभाषा, लक्षण और प्रकार बदलते रहते हैं। इसलिए इनपर अंतिम रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता।

---

१. सं. वि. सा. विद्यालंकार - "प्रकर", (मासिक - अप्रैल, १९८९), (पृष्ठ १४)।